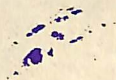
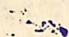




पु. 26



महामहिम्नामपि यश्चिकीर्षति स्वभावसंभुद्धतरं तिरो यशः ।
स नूनमाच्छादयितुं प्रवर्तते विवस्वतो हस्ततलेन मण्डलम् ॥

# माध्वतिमिरभास्करः ।

श्रीमद्वैदिकाद्वैतप्रतिष्ठापकाचार्यश्रीमत्काशीशिवमठाधिष्ठितैः श्रीमत्परमहंस-
परिव्राजकाचार्यत्वाद्यनेकगुणगणालङ्कृतैः श्रीमदुत्तरभारतीविद्यालयाधीशैः
श्रीमद्वैदिकाद्वैतसिद्धान्तप्रचारणाय बद्धपरिकरैः काव्यसांख्ययोगन्याय-
वैशेषिकवेदान्तादितीर्थवेदान्तवागीशमीमांसाभूषणाद्यनेकविरुदमण्डि-
तैर्मण्डलीश्वरैः श्रीमत् १०८ स्वामिभागवतानन्दयतीन्द्रै-
रनुमोदितः समस्तसंहिताब्राह्मणारण्यकोपनिषत्पूर्वमीमां-
सोत्तरमीमांसादिपण्डितप्रकाण्डैः श्रौतस्मार्तशिष्टाचार-
सम्पन्नैः श्रीबाधूलवंशावतंसवेदविशारदमीमांसा-
केसरिभिः काशीस्थहिन्दूविश्वविद्यालयमीमां-
साप्रधानाध्यापकैः श्रीयुक्तचिन्नस्वामि-
शास्त्रिमहोदयैः सम्पादितः ।

श्रीमत्स्वामिरामानन्दशास्त्रिव्याकरणाचार्य्येण प्रकाशितः ।
काशीदेवी शिवमठ, ९५, सप्तसागर, काशी ।

काश्यां रामघट्टे हितचिन्तकाभिधे मुद्रणालये
पावगी इत्येतैर्मुद्रितः । ६७७० a

१९३३ ई०






# माध्वतिमिरभास्करः

वक्तारमासाद्य यमेव नित्या सरस्वती स्वार्थसमन्विताऽभूत् ।
निरस्तदुस्तर्ककलङ्कपङ्का नमामि तं शङ्करमर्चिताङ्घ्रिम् ॥

## उपोद्घात

माध्वसम्प्रदायाचार्य श्री स्वामी सत्यध्यानतीर्थजी गत वर्ष के आरम्भ में गया ( बिहार ) जी पधारे थे। और वहां से 'अद्वैतमत-विमर्श' नामक ग्रन्थ प्रकाशित कराकर, काशीस्थ कतिपय पण्डितों के पास रजिस्टरी द्वारा भेजे थे। इस ग्रन्थ में अद्वैतसिद्धान्त एवं भगवत्पादाचार्य श्री शङ्कराचार्य जी महाराज के प्रति अपलापपूर्ण और साम्प्रदायिक आग्रह से आबद्ध आक्षेप आरोपित किये गये हैं। इन आमूलतः असत्य आक्षेपों का, वैदिक सत्य सनातन अद्वैत सिद्धान्तों के अकाट्य शास्त्रीय प्रमाणों एवं विवेचना की कसौटी पर कसे गये तर्कों के द्वारा उसी समय उत्तर देना उचित एवं न्याय्य था। तथापि मनु के इस उपदेशानुसार 'आक्रुष्टः कुशलं वदेत्' की ही नीति सर्वोपरि मानी गई। इसके अनन्तर उक्त आचार्य जी गया से काशी पधारे तथा पूर्व की भांति पुनः काशीस्थ पण्डित मण्डलो में अपने उक्त ग्रन्थ को वितरित कराये। इस द्वितीय अवसर पर भी पण्डित मण्डली ने क्षमा की नीति को ही उचित मान, कुछ भी उत्तर नहीं दिया। किन्तु इतने से भी उक्त आचार्यजी को सन्तोष न हुआ और आप इस स्तुत्य मौनवृत्ति के लिए काशीस्थ पण्डितसमाज को धन्यवाद देने की अपेक्षा उत्तेजित करने की प्रवृत्ति में संलग्न हुए, अस्तु, अन्ततोगत्वा आचार्य महोदय ने अपने काशी के निवासस्थान पर पण्डितसमाज की एक सभा करने के अर्थ मुद्रित निमन्त्रण पत्र माननीय विद्वानों के पास भेज ही दिया।

इस निमन्त्रणपत्र की भावी आर्यमर्यादा के विरुद्ध लेख तथा उत्तर देने की प्रवृत्ति को आगे रोकने से सनातन मर्यादा की हानि को विचार कर, इस तीसरे अवसर पर उत्तर देने का विचार विद्वानों ने किया। और सभा की निश्चित तिथि पर उपस्थित हो अद्वैतमत के औचित्य-अनौचित्य पर शास्त्रीय विचार करने के हेतु उक्त आचार्य जी से कहा। पर, आचार्य महोदयदल येन केन प्रकारेण काशीस्थ विद्वानों की गर्जना को अस्वीकार करने में ही अपना कुशल समझ किनारा देखने लगा। इसके बाद कई बार फिर शास्त्रीय विचार के अर्थ आचार्य जी का आह्वान किया गया, परन्तु आप (आचार्यजी) विद्वन्मण्डली के ललकार को स्वीकार नहीं किए। साथ ही घर में बैठे २ शास्त्रचर्चा की चाल से भी आप बाज नहीं आये। इस हेतु बाध्य होकर, इस लेखप्रणाली द्वारा शास्त्रचर्चा करने का विचार पण्डितसमाज ने धारण किया है। इसी के फल स्वरूप श्रीमान् पं० हाराणचन्द्रजी भट्टाचार्य प्रधानाध्यापक माड़वारी संस्कृत कालेज (काशी) तथा श्रीमान् पं० सूर्यनारायण शुक्लजी प्रोफेसर गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज (काशी) के 'अद्वैतमतविमर्शखण्डन' और 'माध्वभ्रान्तिनिरास' नामक लघु ग्रन्थ हैं। एवं 'अद्वैतमतविमर्श' में, आक्षेप रूप में कही गई बातों पर विचार करने के लिए इस ग्रन्थ का प्रणयन किया जा रहा है। आशा है आचार्यजी को इससे संतोष मिलेगा तथा अद्वैतविषयक भ्रम भी दूर होंगे।

## विषयप्रवेश

त्रिलोकीनाथ की त्रिविध मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के द्वारा उत्पादित, रक्षित तथा नाशित त्रिगुण सत्व, रज, तम आत्मिका प्रकृति देवी के संसाररूपी क्रीड़ास्थली पर ऐहिक, दैविक एवं भौतिक तापों से बचकर, निर्भय जीवन बिताने के हेतु त्रिविधतापहारिणी भवभयनाशिनी भगवती श्रुति उपदेश दे रही हैं—"द्वितीयाद् वै भयं भवति" अर्थात् निश्चय रूप से दूसरे से भय होता है। भाव यह कि जब एक मनुष्य संसार के प्रत्येक स्थल में अपने को ही देखेगा, तब रागद्वेषादि शत्रुओं के वश में न होगा। और जब किसी से राग

द्वेष-आदि ही न होंगे, तब रागद्वेषमूलक भय सुतरां न होगा। इसी लिए श्रुति कहती है कि सर्वत्र एक अपने को ही देखो दूसरे-पने के भाव को छोड़ो, इससे भय होता है। अस्तु, इसी अक्लेशकर वैदिक सिद्धान्त का प्रचार 'अद्वैतसिद्धान्त' के द्वारा किया गया है। और इस सिद्धान्त के प्रधान आचार्य भगवान् आद्यशङ्कराचार्यजी महाराज हैं। आपने अपनी अकाट्य युक्तियों के द्वारा अद्वैतमत का समर्थन किया है सही पर, इस अवस्था को पहुंचने के लिए प्रारम्भ में सर्वसाधारण को वैदिक कर्मों का अनुष्ठान करना भी आवश्यक बताया है। किन्तु बहुतेरे सज्जन इस तत्त्व को न समझकर वृथा आक्षेप किया करते हैं। ऐसे ही सज्जनों में श्रीमाध्वसम्प्रदायाचार्य सत्यध्यान तीर्थजी भी हैं। आपके इस भाव को व्यक्त करने के लिए अद्वैतमतविमर्श पर्याप्त है। इसी भाव को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है।

## विषय विभाजन

### अद्वैतमतविमर्श के आक्षेपों का विभाजन—

इस ग्रन्थ में उपोद्घात से प्रारम्भ कर उपसंहार पर्यन्त कई प्रकरण किये गये हैं। किन्तु प्रत्येक प्रकरण के पर्यालोचन से शाब्दिक कुछ परिवर्तनों के अतिरिक्त एक ही भाव का बार २ पिष्ट-पेषण दिखाई दे रहा है। अर्थात् इस ग्रन्थ में निम्न चार बातों का वर्णन किया गया है—

( १ ) यह कि-अद्वैतमत अवैदिक नास्तिक बौद्धमत है। ( २ ) अद्वैतमत में कथित बातों का उल्लेख वेद, ब्रह्मसूत्र तथा गीता में नहीं है। ( ३ ) स्मार्तों में जो भस्मादि धारण है वह भी अवैदिक एवं अशुभप्रद है। ( ४ ) विदेशी तथा देशी आङ्ग्लविदों की दृष्टि में भी अद्वैतमत बौद्धमत ही है। इन चारो आक्षेपों का यदि विशद रूप से विवेचन किया जाय तो बहुत बड़ा एक ग्रन्थ तैयार हो जायेगा। अतः, अद्वैतमत और बौद्धमत की भिन्नता तथा वेद, ब्रह्मसूत्र में अद्वैत-वर्णन आदि विषयों का पूर्ण वर्णन अलग किया जायेगा। यहां सब आक्षेपों पर संक्षेप में विचार किया जाता है।

# आक्षेपनिराकरण

## अद्वैतमत अबौद्ध और वैदिक है:—

१-उक्त प्रथम आक्षेप में दो बातें कही गई हैं, १-प्रथम यह कि, अद्वैतमत बौद्धमत है, प्रथम इसी पर विचार कीजिये। भूतकालीन बातों के जानने के लिए और उनकी सत्यता के लिए प्रायः एकमात्र साधन इतिहास ही है। अब, जब यह मान लिया गया कि गत वृत्त के लिए इतिहास ही सर्वप्रधान है तब यह भी मानना पड़ेगा कि अद्वैतसिद्धान्त तथा बौद्धसिद्धान्त के प्राचीन संघर्ष के ज्ञानार्थ प्राचीन इतिहास का अवलोकन किया जाना चाहिये। इस नियम के अनुसार तत्कालीन इतिहास के देखने से ज्ञात होता है कि-"अद्वैत सिद्धान्त के सर्वप्रधान आचार्य भगवान् शङ्कर ने बौद्धों के साथ पूर्ण संघर्ष किया था। और बौद्धमत को भारत से सर्वदा के लिए निकाल बाहर किया था"। इस इतिहासप्रसिद्ध घटनावली को देख संशय होता है कि-'भगवान् शङ्कर-बौद्ध संघर्ष क्यों हुआ? इस संशय के निवारणार्थ इसके अतिरिक्त और क्या उत्तर हो सकता है कि शङ्कर और बौद्ध सिद्धान्त में भिन्नता थी। अन्यथा कोई कारण नहीं कि एक ही मत के मानने के लिए वादी प्रतिवादी हों। भाव यह कि शाङ्कर तथा बौद्धमत में भेद है और इसी भेद के कारण दोनों पक्षों में युद्धारम्भ हुआ। जिसके फलस्वरूप बौद्धों को भारत से विदा होना पड़ा। यह तो इतिहासकृत विभिन्नता हुई, अब शास्त्रीय भिन्नता देखिये। लौकिक-वैदिक साहित्य में तथा भारत के प्रत्येक सम्प्रदाय में अर्थात् जिधर भी दृष्टिपात कीजिये यही दिखाई पड़ेगा कि 'मोक्ष ही सर्वोपरि है'। किन्तु मोक्ष की सर्वप्रधानता स्वीकार करने पर भी, प्रत्येक सम्प्रदाय मुक्तिस्वरूप के कारण परस्पर में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। इसके अनुसार अद्वतसम्प्रदाय तथा बौद्ध सम्प्रदाय भी परस्पर में अलग २ हैं, न कि परस्पर में एक। इसके अतिरिक्त और भी अनेक बातें ऐसी हैं जिनके कारण सम्प्रदायगत भिन्नता दिखाई दे रही है। पाठकों के सुभीते के लिए अद्वैत और बौद्धमत के कुछ प्रसिद्ध भेदबोधक सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

| अद्वैतसिद्धान्त | बौद्धसिद्धान्त |
| --- | --- |
| १—(अ) निरतिशयानन्दबोधरूप आत्मैवानाद्यविद्यानिवृत्त्युपलक्षितोमोक्षः । | (अ) सोपप्लवविज्ञानसन्तानस्याऽत्यन्तोपरमं वा निरुपप्लवसर्वज्ञसन्तानान्तर्भावं वा मोक्षम् ( इच्छन्ति ) । (विज्ञानवादिनः) ( वेदान्तकल्पलतिका ) । |
| ( आ ) उपाध्यनवच्छिन्नस्य ब्रह्मणो विशुद्धरूपता तादृश-उपाधिविगम एव कैवल्यम् । अर्थात् उपाधि रहित आत्मोपलब्धि मोक्ष है । | ( आ ) तत्वज्ञानाच्छून्यभावमेवापवर्गम् ( आहुः ) ( माध्यमिकाः ) वेदान्तकल्पलतिका । (इ) धर्मिनिवृत्तौ निर्मलज्ञानोदयो महोदयः (मोक्षः) (विज्ञानवादी) ( ई ) आत्मोच्छेदो मोक्षः । ( माध्यमिकः ) अर्थात् विज्ञानधारा की समाप्ति तथा शून्यभाव की प्राप्तिही मोक्ष है । |
| २—"अविनाशी वा अरेऽयमात्मा" अर्थात् आत्मा अविनाशी नाशरहित है । | २—आत्मा कोई वस्तु नहीं अर्थात् आत्मा कुछ नहीं है । ( सब्बासवसुत्त ६-१३ ) "आत्मा तो कोई यथार्थ वस्तु नहीं है" ( मिलिंद प्रश्न २, ३, ६ और २, ७, १५ ) |
| ३—विवर्तवाद | ३—परिणामवाद |
| ४—सत्‌वाद | ४—असत्‌वाद |
| ५—ईश्वरवाद | ५—अनीश्वरवाद |

इसी प्रकार से और भी बहुतेरी बातें हैं, जिनके द्वारा दोनों सम्प्रदायों में भेद सुगमता से ज्ञात हो सकता है । किन्तु विस्तरभिया नहीं लिखा जा रहा है । अब उक्त आक्षेप के दूसरे भाग पर कि 'अद्वैतमत अवैदिक नास्तिक मत है' पर विचार कीजिये । इस प्रसंग में मुझे केवल इतना ही कहना है कि अद्वैतमत में वैदिक मत का ही विशद विवेचन किया गया है । एतावता अद्वैत मत वैदिक मत है न कि अवैदिक । प्रमाणतः निम्न कोष्टक दिया जाता है ।

| वैदिकमत | अद्वैतमत |
|---|---|
| १—'ईश्वर एक अविनाशिरूप है' ( ऋ० वे० २, ३, २३ ) | १—ईश्वर एक अविनाशिरूप है । |
| २—'विवर्तवाद'(ऋ०वे०४,७,३३) | २—विवर्तवाद । |
| ३—'सत्कार्यवाद'(ऋ०वे०८,३,१) | ३—सत्कार्यवाद । |
| ४—'मायावाद' ( ऋ० वे० ८, ३-१७, ८, ७-१७ ) | ४—मायावाद |

इसी प्रकार अद्वैतसिद्धान्त की बातें यजुः आदि संहिताओं में भी कही गई हैं । इनसे सिद्ध है कि 'अद्वैतमत वैदिक मत है'। और जब अद्वैतमत वैदिकमत सिद्ध हो गया, तब सुतरां अद्वैतमत का आस्तिकत्व सिद्ध हो गया ।

अब, इस उक्तकथन से अद्वैत का वैदिकत्व सिद्ध होता है या नहीं । और इस अद्वैत सिद्धान्त पर किया गया प्रथम आक्षेप सर्वथा भ्रमात्मक असत्य है या नहीं, इसका विचार विचारशील पाठकों पर ही छोड़कर हम आगे बढ़ते हैं ।

### २—"अद्वैतसिद्धान्त वेद, ब्रह्मसूत्र और गीता का प्रधान ( एकमात्र ) सिद्धान्त है" ।

द्वितीय आक्षेप के द्वारा यह सिद्ध करने का वृथा प्रयास किया गया है कि—अद्वैतसिद्धान्त की बातें वेद, ब्रह्मसूत्र तथा गीता में नहीं हैं । इसके उत्तर में यह कहना है कि—वेदसम्बन्धी विस्तृत विवरण फिर बताया जायेगा, सम्प्रति प्रथम आक्षेप पर कहे गये तुलनात्मक कोष्ठक में वेदवाक्यार्थ देखकर निर्णय करना चाहिए कि अद्वैतसिद्धान्त की मायावाद, विवर्तवाद आदि बातें साफ शब्दों में वेद में कही गई हैं या नहीं ? ब्रह्मसूत्र भी अद्वैतप्रधान ही है और इसका भी विस्तारपूर्वक वर्णन अन्यत्र किया जायेगा। यहां केवल संकेत के लिए 'नाभाव उपलब्धेः' 'नासतोऽदृष्टत्वात्'

---

टि० १—एक से चार तक के मन्त्र एवं भाष्य ( सायण ) को विस्तरभिया नहीं लिखा है । अधिक के लिए ग्रन्थ देखिये ।

२—इन दोनों सूत्रों से सत्कार्यवादरूप अद्वैतसिद्धान्त के कथन के साथ ही बौद्धों का भी खण्डन किया गया है । इस से भी बौद्ध और अद्वैती भिन्न ही सिद्ध होते हैं । अन्यथा सूत्रकार एवं भाष्यकार ( शङ्कर ) का खण्डन करना व्यर्थ होगा ।

ये दो सूत्र ( ब्रह्मसूत्र के ) दिये जाते हैं। पाठक, देखें कि इन सूत्रों में ( सत्कार्यवादरूप ) अद्वैत सिद्धान्त बिना किसी उलटफेर के वर्णन किया गया है, अथवा द्वैतसिद्धान्त। आश्चर्य तो यह है कि इतने खुले शब्दों में सूत्रकार द्वारा अद्वैत प्रतिपादन होने पर भी, कहा जाता है कि—अद्वैत की बातें ब्रह्मसूत्र में नहीं हैं। धन्य हो, आक्षेप करनेवाले महाशय !

## मनु आदि द्वारा अद्वैत का समर्थन।

यद्यपि आक्षेप के समय आक्षेपकर्त्ता महाशय ने स्मृति ग्रन्थों का नाम नहीं लिया है, फिर भी वेद की अनुगामिनी स्मृतियां हैं। अतः अद्वैतसिद्धान्त के समर्थन में वेद के साथ स्मृतिग्रन्थों का भी अवलोकन करना चाहिए। और देखना चाहिए कि अद्वैत सिद्धान्त के संस्कारक भगवान् शङ्कर के पूर्व ही मनु आदि ने क्या कहा है ? यदि कहा जाय कि मनु आदि की बातें उपेक्षणीय हैं, तो ऐसा भी नहीं कह सकते हैं। कारण भगवती श्रुति साफ शब्दों में कहती है 'यद्वै किं च मनुरवदत्तद्भेषजम्' ( तै० सं०, ता० ब्रा० ) अस्तु। अब देखिये मनु जी क्या कहते हैं ?:—

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः।
सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः॥
प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम्॥
एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥
एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत्॥
एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम्॥

( मनु १२, ११८, १२२—१२५ )

इस प्रकार मनुजी अपने ग्रन्थ के उपसंहार में लिखते हैं। इससे

सिद्ध होता है कि मानव ( मनु ) धर्मशास्त्र का मुख्य तात्पर्य ब्रह्मात्मैक्य प्रतिपादन करना ही है । इसी ब्रह्मात्मैक्यप्रतिपादन का समर्थन मनु के व्याख्याता गण भी करते हैं । जैसे-'प्रशासितारमित्यत्र, विद्यात् भावयेत् अहं ब्रह्मास्मीति । जीवात्मपरमात्मनोः प्रत्यक्षपरोक्षयोस्तदुपाधिद्वयपरित्यागेनैक्यं चिन्तयेदित्यर्थः' ( सर्वज्ञनारायणः ) 'परं अविद्यातत्कार्ययोः, अक्षरात् परतः पर इति श्रुतेः, तं अहं ब्रह्मेति विद्यात्, तदात्मानमेवावेदहंब्रह्मास्मीति श्रुतेः । ततः स्वयम्भूर्भगवान् ( मनु १-६ ) इत्युपक्रमे कीर्तितं 'ब्रह्म' 'सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ( मनु ६-८१ ) इति मध्येऽपि परामृष्टं, प्रशासितारमित्यन्तेऽपि निर्दिष्टम् । अत उपक्रमादिभिस्तत्रैव ( ब्रह्मात्मैक्ये ) शास्त्रतात्पर्यमन्यदानुषङ्गिकम्-तथाच श्रुतिः-पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः । ( राघवानन्दः ) अत्र ( मनु० ६-८१, ८२ ) कुल्लूकः-पुत्रकलत्रक्षेत्रादिषु ममत्वरूपान् क्रमेण सङ्गान्सर्वांस्त्यक्त्वा द्वन्द्वैर्मानापमानादिभिर्निर्मुक्तोऽनेन यथोक्तेन ज्ञानकर्मानुष्ठानेन ब्रह्मण्येवात्यन्तिकं लयमाप्नोति । यदाऽऽत्मानं परमात्मेति जानाति तदा सर्वसत्वान्न विशिष्यते, तस्य न कुत्रचिन्ममत्वं मानापमानादिकं वा भवति, तथाविधज्ञानाद् ब्रह्मात्मत्वं च जायते । यस्मादात्मानं जीवमधिकृत्य यदुक्तं, तस्य परमात्मत्वं तद्यो न जानाति न ध्यायति स प्रकृतध्यानक्रियाफलं ममत्वत्यागमानापमानादिहानिं मोक्षं च न प्राप्नोति । अर्थात् 'अविद्यातत्कार्य से पर को ब्रह्मभाव ( अहं ब्रह्म ) से चिन्तन करे' 'उपक्रम, मध्य तथा प्रशासितारं इस उपसंहार से जीवब्रह्मैक्य ही मानवधर्मशास्त्र मे कहा है' 'पुत्रादिसर्वसङ्गों एवं मानापमानादि द्वन्द्वों को छोड़, ब्रह्म में आत्यन्तिकलय को पाता है, जो ( जब ) आत्मा को परमात्मा कर जानता है, सो ( तब ) वस्तुमात्र से भिन्न नहीं होता, और उसको मानापमानादि भी नहीं होते तथा इस प्रकार के ज्ञान से ब्रह्मस्वरूप हो जाता है. ' इस प्रकार जीव और ब्रह्म की एकता जो नहीं जानता उसे मोक्षादि नहीं मिलते हैं । इसी प्रकार याज्ञवल्क्य भी उपक्रम उपसंहार से अद्वैतसिद्धान्त का ही प्रतिपादन करते हैं । जैसेः—

इज्याचारदयाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् ।
अयं हि परमो धर्मो यद्योगेनाऽऽत्मदर्शनम् ॥

निमित्तमक्षरः कर्त्ता बोद्धा ब्रह्मगुणी वशी ।
अजः, शरीरग्रहणात् स जात इति कीर्त्त्यते ॥

अर्थात् नित्य परमात्मा ही उपाधिवश शरीर ग्रहण करने के कारण जीव कहा जाता है। इसके टीकाकार विज्ञानेश्वर भी यही भाव व्यक्त करते हैं:-'सकलजगत्प्रपञ्चाविर्भावेऽविद्यासमावेशवशात् समवाय्यसमवायी निमित्तमित्येवं स्वयमेव त्रिविधमपि कारणं नतु कार्यकोटिप्रविष्टः' अर्थात् सकल प्रपञ्च जगत् के प्रति कारण कोटि मात्र आत्मा ही समवायी, असमवायी तथा निमित्त कारण है। और भी:—

यद्येवं स कथं ब्रह्मन् पापयोनिषु जायते ।
ईश्वरः स कथं भावैरनिष्टैः सम्प्रयुज्यते ॥
अन्त्यपक्षिस्थावरतां मनोवाक्कायकर्मजैः ।
दोषैः प्रयाति जीवोऽयं भवयोनिशतेषु च ॥

व्याख्या-यद्यपीश्वरः सत्यज्ञानानन्दलक्षणस्तथाप्यविद्यासमावेशवशान्मोहरागादिभावैरभिभूयमानो नानाहीनयोनिजननसाधनं मानसादित्रिविधं कर्मनिचयमाचरति । अर्थात् उक्त श्लोकद्वय के द्वारा प्रश्नोत्तररूप में कहते हैं कि यद्यपि ईश्वर सत्यज्ञानानन्दलक्षण है तथापि अविद्या के समावेश से मोहरागादिभावों से अभिभूत होता हुआ अनेक प्रकार की हीन योनियों में जन्म देनेवाले मानसादि तीन प्रकार के कर्मों का आचरण करता है। इस कारण वह (ईश्वर) विविध योनियों में जन्म लेता है। उक्त मनु, याज्ञवल्क्य के समान ही आपस्तम्ब, बोधायन तथा पराशरादि स्मृतिकार महर्षियों ने भी अपने २ भाव अद्वैतसिद्धान्त के ही पक्ष में कहे हैं। जिसे विचारशील सज्जन उन स्मृतियों में देख सकते हैं और निश्चय कर सकते हैं कि श्रुति स्मृति सम्मत अद्वैतसिद्धान्त ही है अन्य नहीं। अब, ऐसी स्पष्टोक्ति की अवस्था में भी यदि कोई भगवान् शङ्कर एवं उनके सिद्धान्त पर आक्षेप करे और साथ ही यह भी कहे कि 'अद्वैतसिद्धान्त वेदादि में नहीं है'। तो यह कथन द्वेषमूलक उन्मत्तप्रलाप के अतिरिक्त और क्या कहाजा सकता है ?

## अद्वैतवाद ही गीता का प्रतिपाद्य विषय हैः—

दूसरे आक्षेप के द्वारा अद्वैतमतविमर्श में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि-अद्वैतसिद्धान्त में जो बातें कही गई हैं, उनका वर्णन गीता में नहीं है। परन्तु यह कथन कहां तक सत्य है, इसका पता पाठकों को गीता के निम्न उद्धरणों से चलेगा। और पाठक देखेंगे की गीता में अद्वैतसिद्धान्त की ही बातें कही गई हैं। अस्तु, प्रकृत विषय पर आइये—

मायावाद—अद्वैतसिद्धान्त के अतिरिक्त किसी भी अन्य द्वैतादि सिद्धान्तों में, मायावाद को स्वीकार नहीं किया है। और यही कारण है कि अन्यद्वैतादि सिद्धान्तों से वैदिक अद्वैत सिद्धान्त सर्वथा भिन्न है। अब देखना यह है कि जिस मायावाद को अद्वैतमत में स्थान दिया गया है। उसका वर्णन गीता में है या नहीं।

देखियेः—'······संभवाम्यात्ममायया' (४-६) 'मम माया दुरत्यया' 'मायामेतां तरन्ति ते' '······माययापहृतज्ञानाः' '······योगमाया-समावृतः' ( ७-१४,१५,२५ ) '······यंत्रारूढानि मायया' ( १८-६१ ) आदि २ स्पष्ट शब्दों में आनन्दकन्द वृन्दावनविहारी भगवान् कृष्णचन्द्रजी क्या कहते हैं ? क्या यह मायावाद नहीं है ? है ! अवश्य है ! यहीं तक नहीं और भी देखिये अति स्पष्ट शब्दों में महाभारतकार कहते हैं।

'माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद।
सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैव त्वं ज्ञातुमर्हसि' ॥

इससे क्या सिद्ध होता है पाठक स्वयं देखें। इस कथन की पुष्टि इस उपनिषद् वाक्य 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' से भी होती है। सब से बढ़कर इस मायावाद में प्रबल प्रमाण तो, सम्प्रति यह है कि 'कर्मसंन्यास और कर्मयोग' के वाद को लेकर भगवान् शङ्कराचार्य्य के भाष्यका ( केवल कर्मन्यास अंश में ) खण्डन करनेवाले स्वर्गीय लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक भी शाङ्करमत के मायावाद का पूर्णरूप से समर्थन करते हैं। जैसेः—'······यह मायावाद श्री शङ्कराचार्य्य ने नये सिरे से नहीं

उपस्थित किया है, किन्तु उनके ( शङ्कराचार्य्य के ) पहले ही भगवद्गीता, महाभारत और भागवत धर्म में भी वह ( मायावाद ) ग्राह्य माना गया था' ( पृ० २०५ ) । इसी प्रकार अन्य कई और स्थलों पर भी लोकमान्यजी ने अद्वैतमत के सिद्धान्तों का समर्थन किया है । जिसे पाठक गीतारहस्य में देख सकते हैं । अस्तु, इतना लिखने का भाव यह कि 'जो मायावाद अद्वैतमत में स्वीकृत है, वह मायावाद गीता में भी है' । जो कहते हैं कि मायावाद गीता में नहीं है, अर्थात् अद्वैतमत की बातें गीता में नहीं हैं; उनका यह कथन सर्वथा निर्मूल एवं असत्य है ।

सत्कार्यवाद—अद्वैतमत में सिद्धान्त के रूप में जिस सत्कार्यवाद का वर्णन है। उस सत्कार्यवाद का समर्थन गीता के 'नाऽसतो विद्यते भावो......' इस श्लोक से स्पष्टतया होता है । एतावता यह कहना सर्वथा मिथ्या है कि अद्वैतमत की बातें गीता में नहीं हैं । हैं । पर देखनेवाले देखते नहीं और ग्रन्थकर्ता के भाव को न समझने के कारण भी यह भ्रम होता है । अस्तु, इसी प्रकार से और भी सभी अद्वैतमत की बातें गीता में हैं । किन्तु उन्हें यहां न दे, केवल जीव ब्रह्म की एकता अन्त में दिखाकर इस प्रसङ्ग को समाप्त करते हैं ।

## गीतामें जीव-ब्रह्म की एकता—

अद्वैतमत का मुख्य सिद्धान्त यह है कि 'जीव-ब्रह्म' एक हैं । इस सिद्धान्त का समर्थन भी गीता द्वारा पदे २ होता है । उदाहरण के लिए देखिये भगवान् साफ शब्दों में कहते हैं:—

'इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥' ( १३ १, २ )

अर्थात् हे कौन्तेय ! यह शरीर क्षेत्र कहा जाता है, और इसको जाननेवाला क्षेत्रज्ञ तथा हे भारत ! सब क्षेत्रों ( शरीरों ) में मुझे ही क्षेत्रज्ञ जानो । भाव यह कि यहां क्षेत्र शब्द से इन्द्रियान्तःकरणादि-संघातरूप शरीर का प्रथम वर्णन कर, पश्चात् तदभिमानी जीवको कह कर 'क्षेत्रज्ञं चापि' इस वाक्य से भगवान् ने एकता बताई है । इसी प्रकार अन्यत्र भी भगवान् कहते हैं—

'सर्वभूतेषु येनेकं भावमव्ययमीक्षते' (१८-२०)
'यावत्संजायते......' 'अनादित्वात......' (१३, २६-३१)
'अहङ्कारं............' (१८, ५३)
'उपद्रष्टानुमन्ता च..........' (१३-२२)
'योऽन्तःसुखोऽन्तरारामः..........' (५, २४)
'यदा भूतपृथग्भाव..............' (१३-३०)

आदि २। उक्त गीता वचनों से सिद्ध होता है कि भगवान् सर्वत्र ऐक्य का ही प्रतिपादन करते हैं। जिस महाभारत से गीता का प्रादुर्भाव हुआ है उस महाभारत में भी ऐक्य का ही प्रतिपादन किया गया है। यहां इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिस पूज्य दृष्टि से हम (अद्वैती) महाभारत को देखते हैं उसी पूज्य दृष्टि से माध्वमताचार्यगण भी देखते हैं। अतः वेदादि के समान महाभारत का कथन भी विशेष महत्व का है।

देखिये—

'आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तस्संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ (म. शा. १२७-२४)
'आत्मानं त्वं विजानीहि सर्वलोकहितात्मकम्।
तस्मिन् यस्संश्रितो देहे ह्यब्बिन्दुरिव पुष्करे ॥
'एवं सर्वेषु भूतेषु गूढश्चरति पूरुषः।
दृश्यते त्वग्रयया बुद्ध्या सूक्ष्मया तत्वदर्शिभिः' (२७)
'रसैर्विमुक्तं विविधैश्च गन्धैरशब्दमस्पर्शमरूपवच्च।
अग्राह्यमव्यक्तमवर्णमेकं पञ्च प्रकारान् ससृजे प्रजानाम्'
'पश्यन्ति यद् ब्रह्मविदो मनुष्यास्तदक्षरं न क्षरतीति विद्धि'
(२०१, २७-२८)

'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते' ॥

'बुद्धिः कर्मगुणैर्हीना यदा मनसि वर्तते ।
तदा संपद्यते ब्रह्म तत्रैव प्रलयं गतम्' ॥
'अस्पर्शनमशृण्वानमनास्वादमदर्शनम् ।
अघ्राणमवितर्कञ्च सत्वं प्रविशते परम् (२०४-१६-१८) ॥
'अनागतिं सुकृतवतां परां गतिं स्वयम्भुवं प्रभवनिदानमव्ययम् ।
अनादिमध्यामृतमव्ययं ध्रुवं विचार्य तत्परमं तत्वमश्नुते' ॥
(२०६-३१ ३२)

भाव यह कि—

आत्मा जब प्राकृतिक गुण से संयुक्त होता है, तब क्षेत्रज्ञ (जीव) कहा जाता है। वही आत्मा उन गुणों से अलग होता है तब परमात्मा कहा जाता है। जो परमात्मा सर्वलोकहितकारी है सो शरीर सम्बन्ध होने के कारण क्षेत्रज्ञ कहलाता है। सब भूतों में एक पुरुष संचार करता है, उसी (संचार करनेवाले) को तत्वदर्शीलोग अपने गुरु उपदेश तथा शास्त्रादि से संस्कृत सूक्ष्म बुद्धि से देखते हैं। वह परमात्मा रूप, विविध रस, गन्ध, शब्द तथा स्पर्श रहित है। तब वह (संचार करनेवाला) कौन है? जिसको ब्रह्मज्ञानी लोग निर्गुण निर्विकार देखते हैं, वह अक्षर कालत्रय अविनाशी परमात्मा ही है। जब बुद्धि कर्म गुणों को छोड़कर, मन में लीन होती है, तब मनोलय होने से पुरुष स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है। इसी प्रकार आगे भी महाभारत में भगवान् नारदजी को उपदेश करते हुए कहते हैं—

"अहं कर्त्ता च कार्य्यश्च कारणश्चापि नारद ।
अहं हि जीवसंघातो मयि जीवः समाहितः ॥
यश्च सर्वगतः साक्षी लोकस्यात्मेति कथ्यते ।
भूतग्रामशरीरेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥
अजो नित्यः शाश्वतश्च निर्गुणो निष्कलस्तथा ।
स वासुदेवो विज्ञेयः परमात्मा सनातनः ॥
(महा. शा. ३३९. २२-२५ ४४)

अर्थात्—मैं जीवों का संघात हूं, जो आत्मा सर्वव्यापी, सर्वसाक्षी लोक का आत्मा कहलाता है सो ही निर्गुण निष्कल वासुदेव

ग/39

परमात्मा है। इन श्लोकों को लिखनेवाले भगवान् श्री वेदव्यासजी महाराज के हृदय में लिखने के समय

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥
निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
एषु सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ॥
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।
एकस्समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्, एको देवो बहुधा सन्निविष्टः ।
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः"

इत्यादि अद्वैतबोधक श्रुतियों की तरङ्गावली उठती हुई मालूम होती है।

## अनुगीता का विषय अद्वैत है ।

श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन को युद्धभूमि में जो गीता का उपदेश किया था, उस समय अर्जुन का मन व्याकुल रहने के कारण उस उपदेश को ( अर्जुन ) ठीक २ ग्रहण नहीं कर सका। जितना ग्रहण किया उसे भी शीघ्र ही भूल गया। पश्चात्, राज्यप्राप्ति होने पर एक दिन सभी पाण्डव भगवान् कृष्ण के समीप बैठे और भक्तप्रवर अर्जुन ने अपने सखा भगवान् कृष्ण से पूछा कि—भगवन् ! युद्धसमय में जिस गीतारूपी अमृतप्रवाह का आपने स्रोत बहाया था वह सम्प्रति मेरे लिए शुष्कप्राय हो गया है। अतः आप कृपा कर पुनः अमृतमय उपदेश दे मुझे कृतार्थ कीजिये। उत्तर में भगवान् संग्रह रूप में गीतार्थ को कहते हुए, आत्मस्वरूप का प्रतिपादन इस प्रकार करते हैं—

आत्मबन्धविनिर्मोक्षं स करोत्यचिरादिव ।
अगन्धमरसस्पर्शमशब्दमपरिग्रहम् ।
अरूपमनभिज्ञेयं दृष्ट्वात्मानं विमुच्यते ॥

( महा० अश्वमेधिकपर्वान्तरगत अनुगीता पर्व १६, १० )

'निर्द्वन्द्वो निष्कलो नित्यः क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः ।

समस्तसंज्ञानुगश्चैव स सर्वत्र व्यवस्थितः ।
सर्वैरपि गुणैर्विद्वान् व्यतिषक्तो न लिप्यते' ॥

अर्थात् परमात्मा नित्य, निर्मल स्वभाव, निर्गुण है । वही क्षेत्रज्ञ बन जाता है । प्राकृतिक सर्व गुणों से मायिक सम्बन्ध होने पर भी वस्तुतः उन सांसारिक गुणों से लिप्त नहीं होता है । भाव यह कि गीता एवं महाभारत दोनों के सिद्धान्तानुसार जीव ब्रह्म का ऐक्यरूप अद्वैतमत ही सर्वविधया माननीय एवं उचित है, और द्वैतमत अमाननीय एवं अनुचित है। इतने स्पष्टीकरण के पश्चात् भी आप ( माध्वाचार्य ) को संतोष न हो तो, मुझे बाध्य होकर आप ( माध्वाचार्य ) के भाष्यकार के शब्दों में ' यद्येषूक्तं न दृश्येत पूर्वकर्मात्र कारणम् ' ( वे० सू० मा० भा० २-१-२ ) कहना पड़ता है ।

इसके बाद, अब ' अद्वैतमतविमर्श ' के उपसंहार प्रकरण में उद्धृत गीतावचनों की संगति पर कुछ विचार किया जाता है—

## अद्वैतमत दैवी संपत् समन्वित है—

अद्वैतमतविमर्श उपसंहार पृ० ३१ की टिप्पणी में ' असत्यमप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरं' आदि कई श्लोकों का उद्धरण देकर ग्रन्थकर्त्ता ने अद्वैतमत को दूषित करने का अशक्य प्रयास किया है। किन्तु अद्वैतवादियों पर आप ( ग्रन्थ कर्त्ता ) का आक्षेप चरितार्थ नहीं होता है। अपितु आप ( माध्व ) के मत पर ही चरितार्थ होता है । देखिये—

आप के द्वारा उद्धृत गीतावचन ( असत्यमप्रतिष्ठं आदि ) में एक तच्छब्द विद्यमान है, वह तच्छब्द पूर्व का परामर्शी है। अतः पूर्ववर्णित का इस तच्छब्द से परामर्श करने पर,'प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः । न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ यह अव्यवहित पूर्ववर्ति श्लोक ही परामर्शित होता है। और इसमें भगवान् ने आसुर संपत् का वर्णन किया है । इसी आसुर संपत् के वर्णन स्वरूप भगवान् आगे भी 'कामोपभोगपरमा' आदि से लेकर 'यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ' ( गीता० १६, ११-१७ ) तक वर्णन करते हैं । यह आसुरी सम्पत् हम अद्वैतियों पर घटती है या आप ( माध्व ) द्वैतियों पर घटती है, इसका निर्णय तो आप

स्वयं ही कर सकते हैं। हम ( अद्वैती ) लोग कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व आदि को मिथ्या ही मानते हैं। अहङ्कार, ममकार आदि काल्पनिक हैं, ये आत्मधर्म नहीं हैं। इस सिद्धान्त को माननेवाले हमलोगों के ऊपर यह उपर्युक्त (आसुरी संपत् रूपी) दोष नहीं लग सकता है। परन्तु यह दोष उन पर ही लग सकता है जो कि इन पदार्थों को वास्तविक आत्मधर्म मानते हैं। इस लिए यहां पर "भवदुत्सृष्टो बाणो भवन्तमेव प्रहरति" इस न्याय के अनुसार लक्ष्यभूत आप ही स्वयं हो जाते हैं। इस प्रकार अब तक गीता सम्बन्धी 'अद्वैतमत विमर्श' में अङ्कित आक्षेपों का उत्तर संक्षेपतः दिया गया है।

इससे पाठकगण स्वयं अब विचार लें कि अद्वैतमत की बातें गीता, भारत तथा अनुगीता आदि में हैं या नहीं। इसके बाद अब द्वितीय आक्षेप के प्रसङ्ग को समाप्त कर, तृतीय आक्षेप का विचार किया जाता है।

## ३— भस्मादि धारण वैदिक एवं शुभप्रद है:—

अद्वैतमतविमर्श (पृ० ७-११ तक) में माध्व सम्प्रदायाचाय श्री सत्यध्यानतीर्थ जी कहते हैं कि भस्मादिधारण अवैदिक आदि है। इस कथन में कहां तक सत्यता है, इसका उत्तर तो पाठक स्वयं करलें, हम प्रमाण उपस्थित किये देते हैं। देखिये यजुर्वेद (१२-३८)

"प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने"

इस मन्त्र में स्पष्टतया भस्म शब्द का उच्चारण कर भस्म धारण की आज्ञा खुले शब्दों में दे रहा है। यदि किसी प्रकार की खींचा-तानी की जाय और इस उक्त मन्त्र का विपरीत अर्थ करने का साहस किया जाय, सो भी यहां सम्भव नहीं है। कारण, आह्निक सूत्रावलीकार अपने ग्रन्थ के नित्य स्नान प्रयोग प्रकरण में इस उक्त मन्त्र को उद्धृत कर इस बात की आज्ञा देते हैं कि ( शुद्धि के अर्थ ) भस्म लेपन कर स्नान करना चाहिये, बिना भस्म लेपन स्नान ठीक नहीं। इससे सिद्ध है कि यह मन्त्र भस्मधारणपरक है। इसी प्रकार यजु० ( ३-६२ ) में भी

'त्र्यायुषंजमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्'

इस मन्त्र से ललाटादि स्थानों में भस्मधारण करने की आज्ञा

दी गई है। इसी श्रुति के अनुरूप पारस्करगृह्यसूत्रकार भी 'भस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणेंसे हृदि च त्र्यायुषमिति प्रतिमन्त्रम्'

इस सूत्र के द्वारा आज्ञा दे रहे हैं कि 'त्र्यायुषं' इस मन्त्र से ललाटादि स्थानों में भस्मधारण करना चाहिए। यह तो वेद और सूत्रों की आज्ञा हैं। अब स्मृतियों की ओर देखिये

'आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्यंतु वारुणम्।

आपोहिष्ठति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम्॥ (मनु, पराशर)

अर्थात् आग्नेयादि पांच स्नानों में एक स्नान (प्रथम-उत्तम) भस्मस्नान भी है। इसी प्रकार सर्व शास्त्रों का सार एवं मूलभूत उपनिषद् भी

"अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म आदि २" के द्वारा भूतप्रपञ्चादि समस्त वस्तु जात को भस्ममय उद्घोषित कर रहा है। साथ ही इस मन्त्र से भस्म को अभिमन्त्रित कर धारण करने की भी आज्ञा दी गई है। इसी बातको पुष्ट करने के हेतु पुलस्त्य कहते हैं 'अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः'...आदि। उक्त वेद, स्मृति, सूत्र और उपनिषद् वचनों के द्वारा भस्म धारण की विधि (आज्ञा) व्यक्त है। एतावता भस्मादिधारण वैदिक है यह सिद्ध हो गया। और जब इस (भस्मधारण) का वैदिकत्व सिद्ध हो गया, तब वैदिक विधि के शुभप्रद होने के कारण भस्म धारण विधि भी शुभप्रद है ऐसा कह सकते हैं। और इस भस्म धारण विधि का यज्ञ, जप, पूजादि शान्तिप्रद सत्वप्रधान कर्मों में धर्म शास्त्रों द्वारा उल्लेख होने के कारण यह भी नहीं कह सकते कि भस्मादि धारण तामसिक है। भला सोचिये तो, यदि यह भस्मादि धारण तामसिक होता तो इसका उल्लेख सात्विक विधानों में क्योंकर होता।

## पद्मपुराण भस्मादिधारण का समर्थक है—

अद्वैतमत विमर्श में श्री सत्यध्यान तीर्थजी फर्माते हैं कि 'पद्मपुराण भस्मधारण का विरोधी है'। किन्तु आपकी इस बात से मुझे हंसी आरही है। कारण, शिवराघव सम्बाद के प्रसङ्ग में (प० पा० १, ४-१२) लिखा है कि

'भस्मोत्पत्तिं महाभाग ! भस्ममाहात्म्यमेव च, भस्मसंधारणे पुण्यं भस्मादाने च तद्वद' 'ततो भस्म समासाद्य प्रमृज्य प्रणवेन तु। त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रयाणां जनकं विभुम' 'स्मरन् नमः शिवायेति ललाटे च त्रिपुंड्रकम्' आदि २।

अर्थात् रामचन्द्रजी भवभयहारी भगवान् शिवजी से पूछते हैं कि आप शिवजी, मुझे ( रामको ) भस्म की उत्पत्ति आदि बताइये। उत्तर में शिवजी भस्मादि धारण की विधि बताते हैं। इसी प्रसंग में आगे एक और उपाख्यान देकर बताते हैं।

'त्र्यायुषविहीनन्तु जमदग्निं तपोनिधिम्।
भस्मैव जीवयामास कश्यपञ्चतथा विधम्॥
'देवानपि तथा भूतान् ममाप्येतादृशं पुरा।
तस्मात्तु भस्मना जन्तुं जीवयामि तवानघे'॥

अर्थात् मन्त्रित भस्मादिहीन जमदग्नि ( मृत ) आदि को भस्म से ही जीवन मिला और तुझे भी फल मिलेगा। और भी देखिये— जिस एकादशरुद्र परिगणित श्री हनुमानजी को माध्वमतावलम्वी अपना प्रधानतया आराध्य देव मानते हैं। वही हनुमानजी

शिवलिङ्गार्चनं कार्यं भस्मोद्धूलितदेहिना' ( पा. पा. ११०,२८२ )

ऐसा साफ कहते हैं कि 'भस्मादि धारण पूर्वक शिव पूजन करना चाहिए'। आगे भी कहा है कि

'प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च समाचम्य समाहितः ( हनुमान् )।
भस्मस्नानमथो चक्रे पुनराचम्य वाग्यतः॥' ( प०पा०११०,३४७ )

अर्थात् हाथों को पवित्र कर और आचमन कर समाहित चित्त से हनुमानजी ने भस्मस्नान किया। कहिये आचार्यजी ! ( माध्वाचार्य्यजी ! ) क्या ? आप के आराध्य देव अवैदिक ही कार्य किये हैं ? नहीं ! कदापि नहीं !! तब फिर आप किस आधार पर भस्मादि का खण्डन करते हैं। हां ! रह गये आप ( माध्व ) के आक्षेप उस सम्बन्ध में मेरा कहना है कि 'उसके साथ इस प्रकृत बात का विरोध पड़ता है। अतः 'असंजात विरोधित्वन्याय' ( पू० मी० ३, ३,१ ) से पूर्वोक्त विषय के प्राबल्य के कारण इस को अप्रामाण्य ही आजाता

है। अथवा 'अपशवो वा अन्ये गो अश्वेभ्यः पशवो गो अश्वाः' इस अधिकरण से सिद्ध 'नहि निन्दा' न्याय से अन्य स्तुत्यर्थ मानना पड़ेगा। यह सर्वथा भस्म-निषेधपरक वचन नहीं है। सर्व साधारण के लाभार्थ संक्षेप में माध्व मत के द्वारा किये गये आक्षेपों का उत्तर दे, भस्मधारण के पोषक प्रमाण उपस्थित किये गये हैं। आशा है इस से विरोधियों को सन्तोष होगा। इस प्रकार तीन आक्षेपों का उत्तर दे, चतुर्थ आक्षेप पर विचार किया जाता है।

## ( ४ ) देशी-विदेशी शुष्क आङ्गलविदों का मत अपूर्ण है—

अद्वैतमत विमर्श में अद्वैतपक्ष को दूषित करने के हेतु नाना प्रकार का छल प्रपञ्च किया गया है। इसके लेखक महोदय कहते हैं कि—' विदेशी एवं देशी ( अंग्रेज-हिन्दुस्तानी ) आङ्गलविद्या-विशारद भी अद्वैतमत तथा बौद्धमत को एक ही सिद्ध करते हैं' ( अद्वैतमतविमर्श पृ० २६, भावमात्र ) धन्य हो लेखक महोदय! आपकी माया अपरम्पार है। आपने तो ठीक उसी लोकोक्ति को चरितार्थ किया है कि ' अपनी नाक कटे तो कटे पर, पड़ोसी का शकुन अवश्य बिगड़े ' अर्थात्-दूसरे को हानि पहुँचाने के लिये लोग अपने हानि लाभ को भी भूल जाते हैं। इसका प्रमाण यहीं देखिये—अद्वैतसिद्धान्तवादियों को हानि पहुँचाने के धुन में मस्त श्री सत्यध्यान तीर्थ जी किस चाव के साथ अंग्रेजीविद्वानों के शरण में जाते हैं। क्या मैं पूछ सकता हूं कि इन अंग्रेजीविद्या-विशारदों की शरणागति के समय आपने 'भारतीय संस्कृति को धराधाम में पहुंचानेवाले यही विद्वान् हैं ?' ऐसा विचारा था। नहीं! कदापि नहीं!! इन आङ्गलविद्याविशारदों की दृष्टि में तो; हम आर्य-हिन्दुओं का भारतवर्ष आदि निवासस्थान नहीं है, वर्तमान मनुष्यजाति बन्दर का शुद्ध रूप है, वेद गड़ेरियों की कहावतमात्र है आदि २ बातें भी ठीक हैं और यहीं स्कूलों एवं कालेजों में पढ़ाई जाती हैं। अब आप बताइये कि उक्त बातों में भी आपका मतैक्य है, कि केवल अद्वैतमतसम्बन्धि भ्रमात्मक बात में ही है। यदि एक ही मत में मतैक्य कहें तो, नहीं कह सकते हैं कारण जिस प्रकार भ्रमात्मक होने के हेतु अन्य बातें अमान्य हैं, उसी प्रकार अद्वैतमत सम्बन्धि बात भी अमान्य है। यदि सभी

बातों में मतैक्य कहे तो प्रश्न होता है कि—क्या मनुष्य जाती बन्दर की सन्तति हैं, या त्रिकालज्ञ ऋषियों की ? क्या वेद अपढ़ व्यक्तियों की उक्तिमात्र ही हैं ? क्या पतितपावनी भगवती भागीरथी से पूत भारतवर्ष आपका आदिनिवासस्थान नहीं है ? क्या गीता के कृष्ण और महाभारत के कृष्ण विभिन्न हैं ? ( आंग्लविद दो कहते हैं )। कहने का भाव यह है कि—प्राचीन ऋषियों एवं आधुनिक विज्ञानबल के आश्रित अंग्रेजीभाषाविदों की दृष्टिकोण में जमीन आसमान का भेद है। अभी तक आधुनिक विज्ञान अपूर्ण है, इसी हेतु उसके ज्ञाता भी भ्रम के चक्कर में घूमते रहते हैं और इसके विरुद्ध हमारा प्राचीन विज्ञान पूर्ण एवं भ्रमरहित है तथा पक्षपातरहित सत्यान्वेषी उसके ज्ञाता भ्रमरहित हो शान्ति को प्राप्त होते हैं। ऐसी दशा में पाश्चात्य पक्ष का आश्रय लेना आप को शोभा नहीं देता। अतः पाश्चात्यों के अपूर्ण सिद्धान्त की उपेक्षा की जाती है (१)। इस प्रकार 'अद्वैतमतविमर्श' में मुद्रित प्रधान आक्षेपों का यथाशक्य सभ्यभाषा के साथ समूल पुष्ट प्रमाणों द्वारा निराकरण कर, प्रभु से प्रार्थना है कि हे प्रभो ! विरोधियों को सद्बुद्धि दो, जिससे यथार्थ ज्ञान प्राप्ति के द्वारा सुख शान्ति को प्राप्त होवें।

इत्येवं श्रुतिनीतिसंप्लवजलैर्भूयोभिराक्षालिते,<br>
येषां नास्पदमादधासि हृदये ते शैलसाराशयाः।<br>
किन्तु, प्रस्तुतविप्रतीपविधयोऽप्युच्चैर्भवच्चिन्तकाः,<br>
काले कारुणिक त्वयैव कृपया ते तारणीया नराः॥

## परिशिष्ट।

अब तक 'अद्वैतमतविमर्श' में किये गये आक्षेपों के सम्बन्ध में विचार किया गया है। अब यहां माध्वसम्प्रदाय से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातों का वर्णन किया जाता है। जिससे पाठक समझ जायं कि 'आक्षेप करनेवाले माध्वसम्प्रदाय में किस प्रकार का

टि० १ यदि आप पाश्चात्य दृष्टि से देखें तब भी अद्वैतवाद ही बहुसम्मत होगा। इसके लिए 'सिस्टम् आफ वेदान्त' तथा काण्ट एवं ग्रीन आदि के ग्रन्थ देखने चाहिए।

खोखलापन है। और वेदादिवचनों का किस प्रकार अर्थ किया गया है। तथा इस सम्बन्ध में अन्य विद्वानों की क्या सम्मति है ?

'तत्त्वमसि' महावाक्य अद्वैतबोधक है:-

अद्वैतमतविमर्श में माध्वमताचार्यजी लिखते हैं कि भेद प्रतिपादक अधिकांश वाक्य हैं, और अभेदप्रतिपादक कम। अतः लक्षणादि द्वारा अभेदबोधक वाक्यों का भेदबोधक अधिकांश वाक्यों के साथ ही अर्थ करना उचित है। किन्तु आप ( मध्वाचार्यजी ) का ऐसा लिखना सर्वथा भ्रमात्मक है। कारण अधिकांश वाक्य अभेदबोधक ही हैं, इसके विपरीत भेदबोधक वाक्य अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। ऐसे भी जो भेदबोधक वाक्य हैं, वे आपाततः भेद परक ज्ञात होते हैं, न कि यथार्थतः। इस ( भेदबोधक ) प्रकार के प्रत्येक वाक्यों का समन्वय यदि किया जाय तो बहुत विस्तार हो जाता है। अतएव आपाततः भेदबोधक वाक्यों में प्रधान वाक्य जो 'तत्त्वमसि' है। और जिस 'तत्त्वमसि' वाक्य को लेकर द्वैती (माध्व) फूले नहीं समाते हैं। उसी 'तत्त्वमसि' वाक्य के सम्बन्ध में हम एक निष्पक्ष सज्जन की सम्मति देते हैं। जिससे पाठक समझ जायेंगे कि कौन पक्ष सत्य के साथ है। देखिये:—

'............अद्वैतवाद को मुख्य समझने ( पर )...........सब वचनों की जैसी व्यवस्था ( संगति ) लगती है वैसी व्यवस्था द्वैत (माध्व) पक्ष को प्रधान मानने से लगती नहीं है। उदाहरण लीजिये, 'तत् त्वमसि' वाक्य के पद का अन्वय द्वैती ( माध्व ) मतानुसार कभी भी ठीक नहीं लगता, तो क्या इस अड़चन को द्वैत ( माध्व ) मत-वालों ने समझ ही नहीं पाया ? नहीं, समझा जरूर है, तभी तो वे ( द्वैती ) इस ( तत्त्वमसि ) महावाक्य का जैसा-तैसा अर्थ लगा कर अपने मनको समझा लेते हैं। तत्त्वमसि को द्वैतवाले इस प्रकार उलझाते हैं-तत्त्वम = तस्य त्वम्-अर्थात् उसका तू है, कि जो कोई तुझ से भिन्न है, तू वही नहीं है। परन्तु जिसको संस्कृत का थोड़ा सा भी ज्ञान है, और जिसकी बुद्धि आग्रह में बंध नहीं गई है, वह तुरन्त ताड़ लेगा कि यह खींचा-तानी का (द्वैती) अर्थ ठीक नहीं है।'
( गीतारहस्य पृ. २३५ )। यहां पर यह कहना अनुचित न होगा कि भगवान् शङ्कराचार्य के कर्मसंन्यास-सिद्धान्त के विरुद्ध कर्म

योग की विरुद्ध दुन्दुभी बजानेवाले स्वर्गीय लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक महोदय की यह अद्वैत पक्ष में उक्ति है। न कि किसी शाङ्कर मतानुयायी की। अस्तु, सार यह कि आपाततः भेदबोधक वाक्य कम हैं, और उनका अर्थ अद्वैत पक्ष के अनुसार ठीक तथा न्याय्य है।

आपाततः भेद बोधक वाक्यों का अद्वैतपक्षीय अर्थ शास्त्र सम्मत है:—

विरोधियों की ओर से कहा जाता है कि अद्वैत पक्ष में भेदबोधक वाक्यों का अर्थ करना दोषमुक्त नहीं है। किन्तु यह कथन शास्त्रीय अज्ञता का जयघोष करना मात्र ही है। कारण अद्वैतबोधक वाक्य अधिक हैं, ( जैसा कि आगे संक्षेप में दिखाया गया है ) और इस अधिकता को लक्ष्य कर, एक दो विरोधी ( स्वरूपतः, अर्थतः नहीं ) वाक्यों का बहुसम्मत अद्वैतपक्षीय अर्थ शास्त्रदृष्ट्या युक्तियुक्त है। जैसा कि 'विप्रतिषिद्धधर्माणां समवाये भूयसां स्यात् सधर्मत्वम्' ( मीमांसाद०-१२, २-२२ ) इस मीमांसादर्शन के सूत्र द्वारा व्यक्त है। इस प्रकार का शास्त्रसम्मत अर्थ करना यदि दोष है तो क्या विना किसी आधार ( प्रमाण ) के भवदीय आचार्यों द्वारा अर्थविभाग निर्दोष है ? क्या 'ज्योतिरूपक्रमा तु तथा ह्यधीयत एके' ( वेदान्त द० १, ४-६ ) इस अधिकरण में कर्मबोधक वेदभाग का ब्रह्मपरत्व अर्थ दोषहीन है ? क्या आप ( मध्वाचार्यजी ) बता सकते हैं, कि किस प्रमाण के आधार पर कर्मबोधकवेदभाग को ब्रह्मपरत्व कहा है ? भाव कि अद्वैत पक्ष में जो अर्थ प्रणाली है वह शास्त्रों द्वारा समर्थित है। इसलिए यह नहीं कह सकते हैं कि अद्वैत पक्ष का अर्थ ठीक नहीं है।

## माध्वमत में अर्थ एवं शब्दों की दुर्दशा—

जो माध्वमतानुयायी 'अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः। ज्ञानलवदुर्विदग्धंब्रह्मापि नरं न रञ्जयति ॥' इस भर्तृहरि की उक्ति के अनुसार जो ज्ञानलवदुर्विदग्ध हैं, उन्हें तो समझाना बुझाना व्यर्थ है। किन्तु जो सहृदय हैं या सत्य के पक्षपाती एवं जिज्ञासु हैं। उनके ज्ञानार्थ और सर्वसाधारण के विवेचनार्थ नीचे कुछ उद्धरण दिया जाता है। इसे पाठक खूब ध्यानपूर्वक पढ़ें और देखें कि माध्वसम्प्रदाय में किस प्रकार अर्थ का

अनर्थ किया गया है। और इस पर भी तुर्रा यह कि अद्वैती ही दोषी हैं। अस्तु ध्यान से देखियेः—"अक्षर शब्द का लक्ष्मी अर्थ, 'यावानर्थ उदपाने' यहां उदपानो = विष्णुः अर्थ, 'त्रैगुण्यविषया' यहां त्रैगुण्याख्यं विषं यापयन्ति—अपगमयन्ति-त्याजयन्ति इति त्रैगुण्यविषयाः त्रैगुण्य के नाश करने वाले अर्थ, और भी "वेदानां कर्मपरत्वेन प्रतीयमानानां ब्रह्मपरत्वस्य ज्योतिरूपक्रमा तु तथा ह्यधीयते एके इत्यधिकरणे व्यवस्थापनात्। स्थाली-पुलाकन्यायेनैकमुदाह्रियते, यथा 'वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यजेत' इति वाक्यम्। अत्र वसन्ते इति विष्णु सम्बोधनम्, वसतीति वसः—पचाद्यच्, तनोतीति तिः—औणादिके डिप्रत्यये टिलोपे च सति तीतिरूपनिष्पत्तिः, पूर्वपदस्य नकारागमः, वसंश्चासौ तिश्चेति वसन्तिः—सर्वत्र व्याप्त्या वर्तमानो जगत्कर्त्ता चेत्यर्थः। तस्य संबुद्धिः हे वसन्ते! द्विरुक्तिरादरार्थः। ज्योतिषेत्यत्रापि जायत इति जिर्जगत्, जनीप्रादुर्भावे इति धातोः पूर्ववदेव डिः। आ + ऊतिः यस्येत्योतिः ओतम्। जगत् ओतं प्रविष्टं यस्मिन् स ज्योतिः। षः = प्राणः चेष्टकत्वात्। ज्योतिश्चासौ षश्चेति ज्योतिषः तस्य संबुद्धिः हे ज्योतिष! एवं आयजेतेत्यपि संबुद्धिः, आ समन्तात् यजैः यज्वभिः इतः प्राप्तः इत्यर्थः। यजेः घञर्थे कविधानम् इति कप्रत्ययः। वचिस्वपियजादीनां किति इति संप्रसारणं तु छान्दसत्वान्न भवति इति कृत्स्नमपि कर्मकाण्डं ब्रह्मपरत्वेन योजनीयम्। अतः प्रातीतिके कर्मकाण्डे नाभिनिवेष्टव्यमिति(१) (गीतामाध्वभाष्य)। अर्थात् कर्म-बोधक वेदमन्त्रों का अर्थ ब्रह्मपरत्वही करना चाहिए, जैसे—'वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यजेत' (प्रतिवसन्त में यज्ञ करे) यहां वसन्ते, वसन्ते, ज्योतिष और आयजेत ये चार पद हैं। और ये चारो पद विष्णु भगवान् के सम्बोधनपरक ही हैं, नकि यागपरक। इसी प्रकार अन्य वेदवाक्यों का भी अर्थ करना चाहिए।" वाह रे! वाह!! खूब कहा। यही तो वैदिकपना है।

आस्तिक होने का यही तो प्रमाणपत्र है। अन्यथा ऐसा क्यों लिखते। जिस हिन्दू जाति के यज्ञसम्बन्धी महत्व को महाभारत-

---

टि० १—कर्मकाण्ड-यागादि का विरोध करनेवाले माध्वमतानुयायी क्या बौद्ध अवैदिक एवं नास्तिक नहीं हैं?

कार 'मनुष्य (जो) कुछ करता है वह सब यज्ञ के लिए करता है। यदि उसे (मनुष्य को) धन कमाना है तो यज्ञ के लिए और धान्य संग्रह करना है तो यज्ञ ही के लिए (म० भा० शां० २६, २५)।' इन शब्दों में व्यक्त करते हैं। जिस यागादि कर्म के अर्थ श्रौतसूत्र एवं पूर्वमीमांसा जैसे दुरूह ग्रन्थों का प्रणयन किया गया है। उसी यागादि कर्मों की साधना दशा में भी अनुपयोगिता सिद्ध करनेवाले माध्वसम्प्रदायियों धन्य हो! धन्य!! संस्कृत साहित्य के अभिज्ञ पाठको! आप से विनय है कि इस उक्त उद्धरण की व्युत्पत्ति पर अपनी करुणामय दृष्टि अवश्य डालिए। तथा ऐसी व्युत्पत्ति के अर्थ इसके कर्ता को व्युत्पत्त्याचार्य की उपाधि से उपहित कीजिये। इस सम्बन्ध में हम अपनी ओर से कुछ न कह कर निम्न दो सम्मतियां दिये देते हैं। इससे अभिज्ञों को सत्य का पता चल जायेगा। लीजियेः—

'......माध्वभाष्य में इस श्लोक के 'नासतो विद्यते भावः' इस पहले चरण के 'विद्यते भावः' का 'विद्यते+अभावः' ऐसा पदच्छेद है और उसका यह अर्थ किया है कि................ परन्तु यह अर्थ सरल नहीं है; इसमें 'खींचा-तानी है' (गीता-रहस्य ६, २४)।

'तद् वेदमेव व्याकुलीकुर्वतो गीताव्याकुलीकरणमुचितमेवेति समाश्वसितव्यम्। वेदगीतयोः प्रारब्धमीदृशमिति वाऽनुशोचनीयम्। कथं नाम प्रतिवसन्तं यागानुष्ठानं केवलभ्रममात्रमिति वैदिको ब्रूयात्? कथं वा निस्त्रैगुण्यो भवेति प्रतीयमानकर्मकाण्डार्थमुपदिशता (भवन्मतानुसारेण) भगवता 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' इति पुनः कर्मकर्तव्यतयोपदिष्टम्? कथं च त्रिषयोदपानादिशब्दानां प्रसिद्धार्थपरत्वे सम्भवति अप्रसिद्धक्लिष्टार्थव्याख्याने दुराग्रहः? कथं च वा (१) 'त्रैगुण्य विषहारिणः' (२) 'प्रलयेप्युदपानोसौ' इत्यादिकं स्वकपोलकल्पितमेव वचनं सम्मतित्वेनोदाहरसि? अथ वा नेदं

टि० १ उद्रेकात् पात्रराहित्यात् अनन्त्वाच्चाखिलस्य च। प्रलयेप्युदपानोसौ भगवान् हरिरीश्वरः॥

२ आश्रित्य वेदांश्चासतमान् त्रैगुण्यविषहारिणः। निस्त्रैगुण्यो भवेन्नित्यं वासुदेवैकसंश्रयः॥

( माध्वमते ) त्वय्याश्चर्यम् । माठर, कौरव्य, माण्डव्य, भाल्लवेयादि-श्रुतीः, ब्रह्मतन्त्र, पुरुषोत्तमतन्त्र, ब्रह्मतर्कादिस्मृतीश्च क्वचिदपि प्रसिद्धस्मृतीतिहासपुराणादिष्वनाघ्रातनामगन्धाः कल्पयतो विषयोदपानव्याख्यावचनकल्पनस्यानाश्चर्यत्वात् । न हि स्वतन्त्रश्रुति-कल्पनासाहसिकस्य छिन्नस्मृतिवचनकल्पनाद् भयमस्ति इति ( गीता, ब्रह्मानन्दी व्याख्या ) ।'

## माध्वमत की कुछ अन्य बातें:—

लौकिक वैदिक दोनों प्रकार के शब्दों को माध्वमत में विष्णु-परत्व माना है । यहीं तक नहीं, तत्त्वप्रकाशिकाकार ( १७ पत्र १ पृष्ठ ) तो 'अपिचये समुद्रादिघोषास्तेषामपि ( ईश्वर एव प्रतिपाद्यः ) किमु वेदानाम्' अर्थात् समुद्रादिकों का घोष ( आवाज ) भी विष्णु-प्रतिपादक है । यहां तक कहते हैं । यदि इस कथन को सत्य मानलें, तो प्रश्न होता है कि 'माध्वमतानुसार समर्थित एवं व्यवहृत ( ज्योतिरादिशब्दानामन्यत्र रूढिर्योगो योगरूढिरुपचारो रूढोपचारः रूढलक्षणा लक्षणा एता वृत्तयो लोके हरौ तु महायोगो महारूढि योगश्च ) इन वृत्तियों में से किस वृत्ति के द्वारा समुद्रादि घोषों को विष्णुपरता कही गई है ? क्या इनके बिना काम नहीं चलता है ? ऐसा सर्वशब्दों में दो २ तीन २ वृत्तियों का मानना (माध्वमतमें) क्या दोष नहीं है ? माध्वमत के प्रसिद्ध ग्रन्थ तत्त्वप्रकाशिका में लिखित 'ज्योतिष्टोम' शब्द की 'ज्योतिषां स्तोमः' व्युत्पत्ति ठीक है? क्या कोई माध्व सज्जन बता सकते हैं कि—किस वैदिक वचन के आधार पर बहुव्रीहि समास के स्थान पर ( षष्ठी ) तत्पुरुष समास किया गया है ? तत्पुरुष समास युक्त पद का क्या अर्थ होगा ? आशा है उक्त प्रश्नों का उत्तर श्री सत्यध्यान तीर्थजी देने का कष्ट उठायेंगे। किन्तु सर्वास्तिकमान्य श्रुति स्मृति विरहित कोई भी वचन प्रमाणकोटि में प्रविष्ट न किया जायेगा ।

## अद्वैतबोधक श्रुतियां—

यद्यपि हम प्रथम लिख आये हैं कि 'वेद और सूत्रों द्वारा किस प्रकार अद्वैत का समर्थन होता है, इसे हम पृथक् दूसरी पुस्तिका से बतायेंगे । तथापि 'अद्वैतमत विमर्श' पृ. ८ पर लिखा है कि 'अभेद प्रतिपादक चार छ वाक्य हैं' इस कथन को मिथ्या सिद्ध करने के हेतु केवल नाम अर्थात् सूची रूप में अभेदप्रतिपादक वेदवाक्यों को

नीचे दिया जाता है। ( १ ) 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः' ( २ ) 'अयमात्मा ब्रह्म' ( ३ ) 'अहम्ब्रह्मास्मि' ( ४ ) 'सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेतत्' ( ५ ) 'आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं कः करिष्यति' ( ६ ) 'एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः' ( ७ ) 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' ( ८ ) 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' ( ९ ) 'एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा' ( १० ) एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' ( ११ ) 'एको देवो बहुधा सन्निविष्टः' ( १२ ) 'एकं सन्तम्बहुधा कल्पयन्ति' ( १३ ) 'त्वमेकोऽसि बहूननुप्रविष्टः' ( १४ ) 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' ( १५ ) 'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' ( १६ ) 'आत्मैवेदं सर्वम्' ( १७ ) 'एकं समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्' ( १८ ) 'तस्मान्न विज्ञानमृतेऽस्ति किञ्चित्' ( १९ ) 'नेह नानास्ति किञ्चन' ( २० ) ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्' ( २१ ) 'भोक्ता भोज्यं प्रेरितारं च मत्वा' सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्' ( २२ ) 'एकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्' ( २३ ) 'त्वमेकोऽसि बहूननुप्रविष्टः' ( २४ ) 'एष त आत्मा सर्वान्तरः' ( २५ ) 'स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यः' ( २६ ) 'तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्' (२७) 'ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो मानुषीं तनूम्' आदि २। पाठकगण स्वयं विचार लें कि अद्वैतबोधक कितने वाक्य हैं।

## उपसंहार—

इस प्रकार स्पष्ट एवं सप्रमाण यह सिद्ध है कि ( १ ) अद्वैतमत वैदिक एवं आस्तिक है, न कि नास्तिक और बौद्ध। ( २ ) अद्वैत सिद्धान्त में कही गई बातों का उल्लेख-प्रतिपादन वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता तथा स्मृति आदि ग्रन्थों में है। ( ३ ) भस्मादि धारण वैदिक एवं शुभप्रद है। ( ४ ) वैदिकसिद्धान्तों के प्रतिपादन में पाश्चात्य ( शुष्क ) आङ्ग्लविदों की तथा पूर्वीय आङ्ग्लविदों की बातें अपूर्ण एवं अमान्य हैं। अतः यह नहीं कह सकते कि इन ( आङ्ग्लविदों ) के मत में अद्वैतवाद बौद्धवाद है। अब केवल इतना ही कहना है कि कृपा माध्वसम्प्रदायावलम्बी अपने मत की पुष्टि में भी इसी प्रकार से वेदादिवचनों को उद्धृत करेंगे। अन्त में जगदाधार जगत्पिता को नमन करता हुआ लेखनी को विश्राम देता हूं। इति शम्।

"एकं ब्रह्मास्त्रमादाय नान्यं गणयतः क्वचित्।
आस्ते न धीरवीरस्य भङ्गः सङ्गरकेलिषु॥"